विषय-सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

आश्विन २०३६ | वर्ष : ३४, अंक : ६
अक्तूबर १९८२ | पूर्णाङ्क : ३३७

श्रुति सुधा

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत ॥ साम० ८७५ ॥

अन्वयः—ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततम् । प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि । अतप्ततनू आमः, तत् न अश्नुते । शृतासः इत् वहन्तः तत् समाशत ।

सं० अन्वयार्थः हे ज्ञान, आनन्द के स्वामी परमेश्वर ! तेरा पवित्र करने वाला स्वरूप फैला हुआ है, उस से प्रभु अर्थात् प्रभावशाली हुआ-हुआ तू हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गों में सब प्रकार से अभिव्याप्त हो रहा है। अतप्ततनूः-असयमी शरीर वाला-अतपस्वी मनुष्य कच्चा है, अत वह उस पावन प्रभु को नही पा सकता। परिपक्व उपासक ही उस को हृदय मे धारण करते हुए उस को सम्यक् रूप मे प्राप्त होते हैं।

अन्वयार्थः—([1]ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततम्) हे ज्ञान, अमृत-आनन्द के अधिपति प्यारे प्रभुवर ! तेरा पवित्र करने वाला ज्ञानरूप वा आनन्दरूप उपासक मे सर्वत्र फैला रहा है, उस से (प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि) अत्यन्त प्रभावशाली हुआ-हुआ तू उपासक के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सब प्रकार से-सब ओर से अभिव्याप्त कर रहा है। परन्तु (अतप्ततनूः) जो अतप्ततनू है, अर्थात् जिस ने अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के द्वारा अपने शरीर को तपाया नहीं, अपने शरीर को पकाया नहीं, (आमः) वह कच्चा है, अपरिपक्व है, अतः एव (तत् न अश्नुते) उस ज्ञानस्वरूप-आनन्दस्वरूप ब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता। (शृतासः इत्) जो शृतास' अर्थात् परिपक्व है, जिन्होने यम-नियम आदि व्रतों के द्वारा अपने आप को

१ "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० ३०१.८.१.१०]
शृतासः- शृञ पाके शृताः एव शृतासः (आज्जसेर सुक् इति सूत्रेण 'असुक' प्रत्ययः स्वार्थे भवति।

परिपक्व बना लिया है ऐसे तपस्वी संयमी उपासक ही (वहन्तः उस को अपने भीतर धारण करते हुए (तत् सम्-आशत) उस के उस ज्ञानस्वरूप-आनन्दस्वरूप प्रभु को सम्यक्रूपेण प्राप्त करते हैं ।

प्रभु वेद-ब्रह्माण्ड-वा आनन्द के अधिपति प्यारे प्रभु का पवित्र स्वरूप सर्वत्र सदा फैला रहता है, उस अपने पावन स्वरूप के द्वारा वह अत्यन्त प्रभावशाली हुआ-हुआ ही सब साधकों के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को आविर्भूत किये रहता है तभी तो सच्चे-सच्चे साधक महापुरुषों के अङ्ग-अङ्ग मे, रोम-रोम से पवित्रता के प्रवाह प्रवाहित होते रहते हैं। साधक को यह सब सहज ही अनुभव होता रहता है कि यह पवित्रता का प्रवाह उस प्यारे प्रभु की ओर से ही आ रहा है।

जो अतप्ततनूः है-जिसने साधना के द्वारा अपने को साधा नहीं-तपाया नहीं-पकाया नहीं वह कच्चा-अपरिपक्व साधक होने से उस पावन प्रभु को नही पाता। जो साधना की भट्टी में तप चुका होता है वह ही उस पावन प्रभु को पाकर उस के आनन्द मे विभोर रहता है।



महापुरुषों के वचन—

१—उपासना—

उपासना— जिस से ईश्वर मे आनन्द स्वरूप मे अपना आत्मा का मग्न करना होता है, उसको "उपासना" कहते हैं।

ईश्वर की उपासना किस रीति से करनी चाहिए, सो आगे लिखते हैं—

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करे, तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करे। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भलि-भाँति से उस में लगा दे।

(महर्षि दयानन्द सरस्वती)

३—जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्य सेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।। विदुरनीति ३.५० ।।

बुढ़ापा रूप-सौन्दर्य को हर लेता है, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणो को, असूया-दूसरो का उत्कर्ष न सह सकना धर्माचरण को, क्रोध शोभा को, अनार्य सेवा-दुष्टो की संगत और उनकी आवभगत शील को, काम-विषय वासना का वेग लज्जा को और अभिमान सब कुछ हर लेता है।

सज्जनों की कामना—

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः।। विदुरनीति ४.३२।।

हमारे कुल में कोई भी वैरी हो, राजा तथा मन्त्री दूसरों के धन का अपहरण करने वाले न हो, मित्रों के द्रोह करने वाले न हो, दूसरों का तिरस्कार करने वाले न हो, झूठ बोलने वाला न हो, पितृयज्ञ-देवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ करने से पूर्व कोई खाने वाला न हो।

४—अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूंनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।। गीता २.११।।

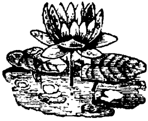
हे अर्जुन ! तू शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और फिर पण्डितों के से वचन बोलता है परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके भी पण्डित अर्थात् बुद्धिमान् जन शोक नहीं करते।

दहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्ति र्धीरस्तत्र न मुह्यति ।। गीता. २.१३ ।।

देही-आत्मा की इस देह अर्थात् शरीर में जैसे बाल्यावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही इस आत्मा को अन्य शरीर की प्राप्ति होती है । इस लिए शरीर विषय में धीरजन मोह नहीं करता।

५—तत्र मित्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ।। हितोपदेश ।।

हे मित्र वहां वास नहीं करना चाहिये जहाँ कि ये चार नहीं हो, ऋण देने वाला, वैद्य-हकीम-डाक्टर, विद्वान् और स्वच्छ जल की नदी वा जल का पर्याप्त प्रबन्ध जीवन सब कलाओं में श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला के मूल्य का अधिकार है जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है !　　　　—महात्मा गान्धी



महापुरुष चरितम्—

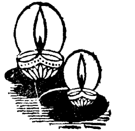
पटना में एक दिन एक मैथिल पण्डित स्वामी जी के पास आया और बड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत करता रहा। प्रसंगवश स्वामी जी ने भागवत का खण्डन आरम्भ कर दिया। इस पर उस पण्डित ने कहा कि स्वामी जी! आप कुछ भी कहें, परन्तु भागवत के अठारह सहस्र श्लोक है, ऐसे और श्लोक रचने की सामर्थ्य आज तक किसी दूसरे विद्वान् में तो नही हुई।

महाराज ने हँसकर कहा कि जैसे कल्पित कथा के अठारह सहस्र श्लोक भागवत में हैं वैसे ही कल्पित श्लोक हम अड़तीस सहस्र रच सकते हैं। नमूने की रीति से जूते और खड़ाऊ के प्रश्नोत्तर ही पहिले लिखिये। स्वामी जी ने अभी उसे दस श्लोक ही लिखाये थे कि वह उन श्लोकों के वचन-माधुर्य पर और पद विन्याय के लालित्य पर ऐसा लट्टू हुआ कि उसने महाराज के चरण पकड़ लिये। वह ब्राह्मण स्वामी जी की रचना शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ वहाँ से चला गया।

अजमेर में एक दिन व्याख्यान देते समय, स्वामी जी ने ढाई पुराने पन्ने उठाकर दिखाये और कहा कि मैंने अखिल आर्य्यावर्त्त में धनुर्वेद को खोजा परन्तु केवल ये ढाई पन्ने ही मिले। यदि मेरे जीवन की लड़ी बनी रही तो वेदो से धनुर्वेद का प्रकाश अवश्यमेव कर दूंगा।

जुए का आक्रमण (मुन्शीराम बाद में स्वामी श्रद्धानन्द)

हुक्का, शराब और मांस का व्यसन तो लग ही चुका था अब मद्य और मांस के साथी जुए ने भी अपना रंग जमाया। किसी ने झूठा वहम डाल दिया कि "जो मनुष्य जुआ नही खेलता वह दूसरे जन्म में गदहा बनता है।" गदहे की योनि से बचने के लिये मुन्शीराम ने जुआ खेलना शुरु कर दिया। परन्तु गाली-गलौज और गन्दी बोलचाल से उन्हें ऐसी घृणा हुई कि जुए के श्रीगणेश के साथ ही उसकी इति श्री भी हो गई।



महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्रद्धाञ्जलि

नादान लोगों ने उस योगी का भेद नहीं पाया ।



(१)

कोई कहे मत आ इस द्वारे । विष दाता कह पत्थर मारे ।
क्या जाने किस्मत के मारे । सुधा कलश ले आया ॥ नादान० ॥

(२)

गाली देते नहीं लजाये । विष का प्याला लेकर आये ।
जोगी मेरा प्रेम दिवाना । विष का घूंट उड़ाया ॥ नादान० ॥

(३)

रोम-रोम बन फोड़ा बोला । मेरा सेवा के कारण था चोला ।
खूब करी प्यारे ने लीला । उस का उसे चढाया ॥ नादान० ॥

(४)

रोम–रोम बन फव्वारा । फूट पड़ी अमृत की धारा ।
एक बून्द ने नास्तिक मुनि का । सारा मोह बहाया ॥ नादान० ॥

(५)

बार-बार नर जीवन पाऊँ । बार-बार बलिदान चढ़ाऊँ ।
ऋण तो भी मुझ से ऋषि तेरा । जावे नहीं चुकाया ॥ नादान० ॥

(स्वर्गीय स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती



—केषा संस्कृतभाषा—

लेखक—प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु" प्राध्यापक वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

संस्कृतभाषा एषा सर्वासु विश्वभाषासु प्राचीनतमा इति समस्त भाषाशास्त्रविदां डिण्डिमघोषः भाषान्तरविलक्षणैर्विशिष्टैः प्रकृतिप्रत्ययादसंस्कारविशेषैः संस्कृतत्वादियं किल संस्कृतभाषेति अन्वर्थसंज्ञा लेभे। भाषा हि द्विविधा भवाणोभर्वात—प्राकृतभाषा सस्कृतभाषा चेति। तत्र केचन-प्रकृतिः संस्कृतं, तदागतं प्राकृतमिति व्यवतिष्ठन्ते। अपरे तु शुद्धसंकृतोच्चारणाक्षमाणा प्राकृतभाषैषा व्यवहारिकी भाषा इत्याचक्षते। विद्वच्छ्रेष्ठेन मार्कण्डेयमहानुभावेन स्वकीयप्राकृत सर्वस्वाख्ये ग्रन्थेऽस्याः प्राकृत भाषायाः भाषा-विभाषा-अपभ्रंश-पैशाची-भेदाच्चत्वारो भेदाः सूत्रिताः। सस्कृत भाषा तु पुनर्माधुर्यलालित्य-गाम्भीर्यादि-निरविलातिशायिगरिष्ठगुणगरिम्ना सर्वैः महता समारम्भेण समाद्रियमाणा समस्तससृतिवाङ्मयस्रजि मध्यममणिरिव विलसन्ती राराजते।

सर्वविदितमेवैतत् यत् संस्कृत खलु दैवी वाणी। सेयं देवैर्विद्वद्भिः व्यवह्रियमाणत्वा द्देवभाषेत्युच्यते। "विद्वान्सो हि देवा" इति शतपथब्राह्मणस्योक्तिः। संस्करणैः संस्कृतत्वाच्च सैव संस्कृतमित्युच्यते। उक्तञ्च—

संस्कृतं हि दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।"
"भाषासु मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती॥"

सेयमन्वर्थसंज्ञा गीर्वाणवाण्या यत् संस्कृत भाषा देवभाषा वा नामेति। भाषणाद्धि भाषा भवति। भाष्यते भाषणादिव्यवहारोऽनुष्ठीयते यया सा भाषा इति तद्व्युत्पत्तेः। भाषा हि लोक व्यवहार निर्वहण स घनेषु प्रधानभावं जुषते इति न निरोहितं मतिमत म्। भाषाधीनो हि खलु सर्वोऽपि व्यवहारो लोकस्य। यद्यपिजना इङ्गितैस्तत्तदङ्गभिनयेन वा स्वान्तरङ्गभावान् तांस्तानाशयविशेषान् वा परत्र सङ्क्रमयितुं प्रभवन्ति यथाकथञ्चित् तथापि भाषां द्वारीकृत्य आशयमावेदयितुं यादृशी सौकरी, नैव तादृशी कराद्यवयवाभिनयेन विद्यते इति विश्वजनीनम्। तदेवम्, अन्तरेण भाषां नाणुरपि लोकव्यवहारो निष्पद्यते जगति इति निर्विशङ्कम्। तदिदं भाषाऽपरनामधेयं शब्दाह्वयं ज्योतिः सावित्रं ज्योतिरिव लोकयात्रायामस्माकं कियद्वा नोपकरोति इति तु वक्तव्यं नापेक्षते। भाषाया अभावे न कथमपि सिध्येदस्याभिजातजानसमाजस्य लोकव्यवहार प्रपञ्चः। स्थान एवोक्तं ननु महाकविनामुना पदलालित्यधनिना दण्डिना—

"इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदिशब्दह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥"

निखिलेऽपि भूमण्डलेऽस्मिन् नास्ति तादृशः कश्चिदपि भूखण्डो यत्र जनसमाजेन नापेक्ष्यते भगवत्या भाषाया अनुग्रहः। भाषाऽऽलोकं विना कृत्स्नोऽपि लोकोऽन्धकारयमः सम्पद्यतेति प्रस्फुटम्। तस्माद्भाषा

अपरिहार्या लोकव्यवहारनिष्पत्त्यर्थमित्यत्र तु प्रमत्तं विना कोऽन्यः संशयीत।

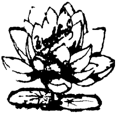
सा च पुनर्भाषा शब्दसंघातजन्या। शब्दसंघातश्च वर्णप्रकृतिकः। वर्णाश्चाज्झल्लक्षणाः। तदेषाम् अज्झलाञ्च स्वरव्यञ्जनापरनामधेयानां, सकलभाषा-बीजभूतानांभवतरणं कुत इति जाज्वल्यमानः प्रश्नः।

अस्माभिरुच्यते अज्झलामाविर्भावस्तावद् वेदादेवेति। तत्कथमिति चेदुच्यते—वेदादृतेनान्यत्र क्वचिदपितेषां दृष्टिगोचरता। वेदो हि भगवन्निर्मितिः। सृष्ट्यादौ परमकारुणिकः जगन्नियन्ता परमपिता परमात्मा अग्निवाय्वादित्याङ्गिरामहर्षिणां हृदयेषु ज्ञानं प्रणिददौ। तस्मादेव भाषा भाष्यमाणा दरीदृश्यते। शब्दार्थौ नित्यौ, सर्वदा सहस्थावेव भवतः। यथा प्राह कविकुलगुरुः कालिदासः -

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।"

आचार्यभर्तृहरिस्तु शब्दतत्त्वं ब्रह्मरूपेण निरूपयति। यथा—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन भावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ (वाक्य पदीये)
शब्दशक्तिस्तु परमात्मनोवरदानम्॥



वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला में पठित निबन्ध

स्वामी दयानन्द का शिक्षा दर्शन--

—डा० भक्तराम–प्राध्यापक, पी० जी० डी० ए० वी० महाविद्यालय
नेहरू नगर, नई दिल्ली ६६

स्वामी दयानन्द एक वैदिक ऋषि थे। सूक्ष्म विचारक एवं दूरदर्शी को ऋषि कहा गया है। जो धर्म अर्थात् मानव कर्त्तव्यों का अपने जीवन में साक्षात्कार कर लेता है। स्वामी दयानन्द ने सौ वर्ष पूर्व मानव हितार्थ जो विचार प्रस्तुत किये परवर्ती मनीषियों विद्वान् विचारकों एवं नेताओं ने चाहे वे भारतीय अथवा अन्य देशीय थे मुक्त कण्ठ से स्वीकार किये। ऋषि दयानन्द ने अपनी विचारधारा का मूल वैदिक एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों को रखा है जिनमें से उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार भी पूर्ण मौलिक है अथवा आर्य एवं भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुरूप है। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में कोई विदेशी पुट नहीं तथापि मौलिक एवं उनके मस्तिष्क को उपज है। स्वामी जी कहते है "जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके वह शिक्षा कहती है। इस प्रकार स्वामी जी विद्या की प्राप्ति अविद्या का त्याग और उसका परिणाम–आनन्द को शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। पदार्थ का यथावत्–स्वरूप जानना उससे अपने व दूसरों को सुखी बनाना वह विद्या है. इसमे विपरीत अविद्या है। उन्होंने आर्य समाज का एक नियम भी लिखा–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। स्वामी दयानन्द के मतानुसार शिक्षा का आरम्भ घर से, तत्पश्चात् विद्यालय है। बालक को शिष्टाचार सिखाना माता-पिता का कर्त्तव्य कहा है। एवं उदार चरित्र के सूत्र तथा अनेक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना आचार्य का कर्त्तव्य है।" (सत्यार्थ प्रकाश) साधारण भाषा का ज्ञान माता-पिता करायें। प्रथम मातृ भाषा पश्चात् अन्य देशीय भाषाएं। शुद्ध उच्चारण पर विशेष ध्यान दे। घर में बालक को शिक्षा न देने वाले अपनी सन्तान के शत्रु हैं। वे बालक को मनोवैज्ञानिक विधि से शिष्टाचार की शिक्षा दें। स्वामी जी के मत में माता-पिता का धार्मिक होना आवश्यक है। वे घर में ही बालक को वैदिक एवं आर्ष ग्रन्थों के वाक्य और सूक्तियां अर्थ सहित कण्ठस्थ करा दें जिससे उनका बौद्धिक विकास उचित दिशा की आर आरम्भ हो जाये। ऐसा होने पर विद्यालय में बालक स्वतः उन्नति करेगा एवं शिक्षक का मार्ग भी प्रशस्त हो जायेगा।

इसके अनन्तर विद्यालय की शिक्षा आरम्भ होती हे। स्वामी दयानन्द ने अनेक वर्ष पूर्व अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता बताई। सच्चा साम्यवाद अथवा समाजवाद का सम्बन्ध शिक्षा काल मे ही आरम्भ हो जाता है। ऋषि लिखते हैं—पाठशाला नगर से ५ पांच मील दूर हो, सबको तुल्य वस्त्र खान-पान आसन दिये जाये। चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हों सबको तपस्वी होना चाहिये। राजनियम और जाति–नियम होना चाहिये कि पांचवे अथवा आठवे वर्ष से आगे लड़के व लड़कियों को घर में न रखें, पाठशाला में अवश्य भेज दें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो इस प्रकार स्वामी दयानन्द के मत में शिक्षा अनिवार्य एवं समान होनी चाहिये। बालक-बालिकाओं का निवास आश्रम में ही हों इसी का नाम गुरुकुल है। (सत्यार्थ प्रकाश)

आचार्य की योग्यता के विषय में उन्होंने कहा–जो विद्यार्थियों को प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा पूर्वक विधि के लिये के लिये तन-मन और धन से प्रयत्न करे उसको आचार्य कहते है (व्यवहार भानु)। गुरुजन शिक्षा देते हुए विद्यार्थियो से कहें कि जो हमारे अन्दर उत्तम चरित्र हैं उनका अनुकरण करो हमारे बुरे कामो का अनुकरण न करो। जीवन में सत्य, तप, दम (मन को वश में करना) और शम का पालन करना। शिक्षण काल में भारतीय पुरातन परम्परा के अनुसार स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य अर्थात् संयमी जीवन को अनिवार्य बताया है। इसका तात्पर्य आरण्यक या वनवासी जीवन नहीं। विद्या के साथ व्रत पालन भी आवश्यक है। व्रताभ्यास के बिना विद्याभ्यास व्यर्थ है। अतः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह, इन पांच नियमों का पालन विद्यार्थी के लिये आवश्यक कहा गया है। यदि कोई विद्यार्थी सम्पूर्ण विद्याध्ययन करने के पश्चात् अपने लौकिक जीवन में दुराचारी है तो उसकी विद्या व्यर्थ है अतः इन्द्रियों को वश में रखना आवश्यक है।

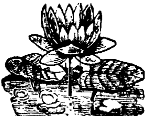
इस प्रकार चारित्रिक विकास के बिना नाना विद्या विज्ञान प्राप्त कर लेना, आचार धर्म का पालन न करना स्वामी दयानन्द के मन में शिक्षा को निष्फल करना है। अतः वे अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनो को उच्च चरित्रवान् होना आवश्यक मानते हैं। वे लिखते हैं—आलस्य, अभिमान, नशा करना, मूढ़ता, चंचलता, व्यर्थ बातें करना, लाभ-लालच इत्यादि दोष विद्यार्थी में नहीं होने चाहिये। इसी प्रकार जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान हो, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुख दुःखादि का सहन धर्म का नित्य सेवन करने वाला हो वह पण्डित (अध्यापक) कहाता है। (सत्यार्थ प्रकाश)

आचार्य ही बालक को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है वह उत्तम शिक्षा द्वारा उसको वाणी, चक्षु आदि इन्द्रियों एवं चरित्र को शुद्ध करता है धर्मानुकूल बनाता है। उसके मन एवं प्राण शक्ति को पुष्ट करता है। क्रूरता को दूर करता है, उसे राक्षसों दुष्ट पुरुषों से बचाता है। (वेद भाष्य)॥

शिक्षा के विषय अर्थात् पाठविधि के विषय में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण सर्वथा आर्ष है। वे अनार्ष ग्रन्थो के पढ़ाने के विरुद्ध है। उनके मत में जितना ज्ञान अल्प समय में ऋषि-कृत ग्रन्थों के पढ़ने से सम्भव है उतना साधारण विद्वानो के ग्रन्थों से असम्भव है। व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, छः दर्शन, ग्यारह उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, चारों वेद आयुर्वेद, धनुर्वेद। राजनीति-शास्त्र

गान्धर्व वेद (संगीत) ज्योतिष शास्त्र, बीजगणित, अंकगणित, खगोल, भूगर्भ विद्या ये सब विषय पाठविधि में अध्ययन करने योग्य हैं। कन्याओं के लिये व्याकरण, धर्म वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या अवश्य सीखनी चाहिये। उन्हें घर में गृहस्थ धर्म की भी शिक्षा दी जाये। (सत्यार्थ प्रकाश) राज्य की ओर से प्रबन्ध हो कि बालक विद्यालयों में विद्वान् परीक्षक एवं कन्या विद्यालयों में स्त्रियां परीक्षिका नियुक्त की जायें। किसी की भी सन्तान विद्या से रहित न रहें। पढ़ाने वाले विद्वान् भिन्न हों एवं मासिक परीक्षा लेने वाले विद्वान् दूसरे हों। तीव्र बुद्धि बालकों को विशेष परिश्रम से पढ़ाया जाये। इस प्रकार स्वामी दयानन्द शिक्षा में सुधार के लिये मासिक परीक्षा को आवश्यक मानते हैं। उन्होंने शिक्षा को यज्ञ स्वीकार किया है, केवल पुस्तक पढ़ने में समय बिताना नहीं। (वेद भाष्य) शिक्षा कार्य को उन्होंने दो भागों में बांटा है। एक

राज्य के प्रबन्ध मे तथा दूसरा वनियों के प्रबन्धों में। जिससे शिक्षा केवल सरकारी तन्त्र में न हो कर स्वतन्त्र भी रहे। वे प्रशासन द्वारा अध्यापकों को धनादि पदार्थ देकर सन्तुष्ट करना आवश्यक कर्त्तव्य मानते है (वेद भाष्य)। उनका कथन है कि जो सुशिक्षित, सुबुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, विविधविद्याओं का ज्ञाता तथा विद्वत् समाज में प्रिय हो वही शिक्षा विभाग का अधिष्ठाता अधिकारी, मन्त्री आदि होना चाहिये। अत्युत्तम सुशिक्षित जन ही विधान सभाओं के सदस्य, प्रधान पुरुष, राजपुरुष एवं राजा बनाया जायें। अतः शासन तन्त्र में उत्तम शिक्षा का महत्व है। वे सह-शिक्षा के विरोधी हैं उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में पाँच वर्ष का बालक और पाँच वर्ष की कन्या का भी एक दूसरे के विद्यालय में जाना निशेष किया है तथा वेद भाष्य में स्थान-स्थान पर बालक विद्यालयों में पुरुष अध्यापक एवं कन्या विद्यालयों में स्त्री अध्यापिका नियुक्त करने का आदेश किया है। वे शास्त्राध्यन के साथ जब तक विद्यार्थी जीवन है तब तक ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य समझते हैं। उनके विचार में बालक घर मे न रह कर आचार्य-कुछ अर्थात् छात्रावास में हो रहें। विद्या समाप्ति पर हो घरेलू अर्थात् लौकिक जीवन से रखं जिससे धनी निर्धन का भेद विद्यार्थी जीवन में न रहे। जन्म की जांत-पांति का भी कोई प्रवेश न हो। उन्होंने आचार्य के लिये ब्रह्मचर्य जीवन का विधान किया है। बल्कि राजा एवं राजपुरुषों के लिये भी। अर्थात् वे शिक्षा के क्षेत्र में संयमी जीवन की आवश्यकता मानते हैं। (संस्कार-विधि) शिक्षा को परिणत क्या हो इस विषय में उनके विचार बड़े उच्च हैं।" विद्या समाप्ति के पश्चात् शिष्य अपने जीवन में सदा सत्य बोले, धर्म पर चलता रहे स्वाध्याय जो न त्यागे, सत्य, धर्म से पृथक् न हो। विद्वान् माता आचार्य अतिथि आदि का सम्मान करे। श्रेष्ठ कर्मों का आचारण एवं दुष्कर्मों का त्याग करे, श्रद्धा पूर्वक दान देता रहे। समय-समय पर सदाचारी विद्वानों को संग करता रहे। (सत्यार्थ प्रकाश)



राम-साहित्य की व्यापकता—

—डा० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

राम-कथा भारतीय संस्कृति की अमर कथा है। बाल्मीकि के समय से अब तक राम-कथा में अनेक प्रकार के रूप देखने में आये हैं। भारत की प्रायः समस्त प्रमुख भाषाओं में राम-कथा समय-समय पर लिखी गई है। शायद ही कोई भाषा होगी, जिसको साहित्यिक गौरव प्राप्त हो और राम वृत्त का उससे संस्पर्श न हुआ हो। रामवृत्त के संस्पर्श से प्रत्येक भाषा अलंकृत हुई है। राम कथा से भारतीय संस्कृति मुखरित हुई है। राम-कथा अपने आप में अति व्यापक हो गया है और इस कथा ने अब वृहत् रूप धारण कर लिया है।

अतः राम साहित्य की व्यापकता का परिचय इस निबन्ध में दिया जा रहा है। बाल्मीकीय रामायण वास्तव में राम-कथा का मूल एवं प्रामाणिक आधार है। उससे पूर्व राम-कथा के पात्रों का उल्लेख-कथा के रूप में नहीं नामों के रूप में वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। अतः बाल्मीकि पूर्व राम कथा की परम्परा को समझने के लिये वैदिक साहित्य में राम कथा का उल्लेख आवश्यक है।

वैदिक साहित्य में राम-कथा—

राम-कथा के अनेक पात्रों का नामोल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है, पर उनमें से किसी भी पात्र का किसी भी कथा-विशेष से अथवा आख्यान से सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। वैदिक-साहित्य में जहाँ कहीं भी राम-कथा के पात्रों का उल्लेख है वह प्रचलित राम-कथा से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं है। कोई भी पात्र हमारे सामने उस रूप में उपस्थित नहीं होता, जिस रूप में वह आज दिखायी देता है।

वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथाएं प्रसिद्ध हो चुकी थी, इसका निर्देश समस्त वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नाम से मिलते हैं, इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी अवश्य प्रचलित थे।

बाल्मीकीय-रामायण में रामकथा—

राम-कथा की दृष्टि से बाल्मीकीय-रामायण प्राचीनतम ग्रन्थ है। राम-कथा का समग्र एवं परिपक्व रूप इसी में सर्वप्रथम उपलब्ध है। प्राचीन भारतीय-परम्परा बाल्मीकि को आदि कवि और बाल्मीकीय-रामायण को आदिकाव्य मानती है। 'आदि काव्यमिदं त्वार्ष पुरा बाल्मीकिना कृतम्। बाल्मीकि कृत रामायण की रामकथा का महत्त्व देव कथा के रूप में नहीं मनुष्य-कथा के रूप में है।

बाल्मीकि द्वारा नायक का चयन चरित्र तथा दुर्लभ गुणों के आधार पर मानव-समाज से किया गया था। बाल्मीकि कृत राम-कथा की मूल-प्रेरणा मानव मंगल की थी जो अन्तःप्रवाही करुण रस से परिपूरित शोक से श्लोक में परिणित हो गयी थी।

महाभारत में राम-कथा—

बाल्मीकि कृत रामायण के पश्चात् राम-कथा का विस्तृत रूप महाभारत में ही उपलब्ध होता है। रामायण और महाभारत दो उपजीव्य महाकाव्य माने जाते हैं। महाभारत में राम-कथा मुख्यतः चार स्थानों पर आयी है। रामोपाख्यान के रूप में भी राम-कथा का विस्तृत रूप महाभारत में आरण्यकपर्व में उपलब्ध है। रामकथा के अनेक पात्रों का उपमाओं के लिये यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में रामायण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भारतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥ (६,६३)

महाभारत के आरण्यक पर्व में भीम कहते हैं कि हनुमान् रामायण में अति विख्यात है—

भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्वबलान्वितः।
रामायणेऽति विख्यातः शूरो वानरपुंगवः॥ (१४७, ११)

रामायणकार आदि कवि बाल्मीकि का महाभारत में तपस्वी महर्षि तथा भार्गव 1आदि के रूप में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। द्रौपदपर्व में एक स्थान पर कवि बाल्मीकि का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।२

इससे स्पष्ट है कि महाभारत के रचयिता बाल्मीकि-रामायण तथा रामकथा से भली-भांति परिचित थे।

महाभारत में राम के असामान्य लौकिक रूप के साथ-साथ अवतार रूप के भी अनेक प्रसंग आये हैं।

बौद्ध राम-कथा—

महाभारत के अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य में भी राम-कथा आयी है। ईसा के तीन सौ चार सौ वर्ष पूर्व रामकथा बहुत लोकप्रिय हो गई थी। इसी राम-कथा को बौद्धों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ढाल लिया। यह राम-कथा जातक साहित्य में सुरक्षित है। बौद्ध मतावलम्बी बोधिसत्व को राम का पुनरावतार मानते हैं। बोधिसत्व के असंख्य पूर्वजन्म की कथाएं जातकों में अनेक प्रचलित तथा लोकप्रिय कथाओं का भी समावेश हुआ है। रामकथा भी इसी प्रकार जातकों में प्रविष्ट हुई। बौद्ध जातक अपने मूल भारतीय पाठ में उपलब्ध नहीं होते। रामकथा सम्बन्धी तीनों बौद्ध जातक ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पाली भाषा में लिखे गये तिपिटक के दूसरे पिटक सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय में मूलरूप में संग्रहीत माने

१ शान्तिपर्व ५७-४०। २ ११७, ४८।

जाते हैं। दशरथ जातक को लेकर विद्वानों में बड़ी चर्चा हुई है। यह जातक ढ़ढाण्णना पाया जाता है। यह जातक ठ्ठवण्ठाना पांचवी शताब्दी की एक सिहली भाषा की पुस्तक का पाली अनुवाद है। दूसरा अनामक जातकम् चीना भाषा की लिये उत्त्सी किंग नामक पुस्तक में सुरक्षित है। तीसरा जातक दशरथ कथानम् ४७२ ई० स० में चीनी के त्स-पो-तिंग नामक त्रिपिटक भाषान्तरित रूप में समाविष्ट है।

बौद्ध साहित्य में राम-कथा उल्लिखित तीन जातकग्रन्थों में ही विशेषकर उपलब्ध है। आगे जाकर बौद्ध रामकथा की लोकप्रियता घट गयी। अन्य बौद्ध साहित्य में कहीं एकाध स्थान पर रामकथा के किसी एक पात्र अथवा प्रसंग का आधार लिया हुआ अवश्य उपलब्ध होता है।

जैन साहित्य में राम-कथा—

भारतीय रामकथा परम्परा का अत्यधिक विस्तृत रूप जैन-साहित्य में मिलता है। बौद्ध साहित्य की राम-कथा की अपेक्षा जैन-साहित्य की राम-कथा अपने विस्तार की विशेषता के साथ-साथ अन्य अनेक विशेषताओं को संजोये हुये है। बौद्ध महात्मा गौतम बुद्ध को राम का पुनरावतार मानते हैं। जैनाचार्य राम तथा राम-कथा के पात्रों को जैन मतावलम्बी चित्रित कर उन्हें अपने धर्म में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। राम, लक्ष्मण तथा रावण न तो केवल जैन मतावलम्बी है वरन् जैनियों के त्रिषष्ठि महापुरुषों में इन तीनों की गणना होती है। डा० कामिल बुल्के ने 'राम-कथा' में जैन-साहित्य की राम-कथा का बड़ा विस्तृत विवेचन किया है।

जैन राम-कथा की प्रमुख विशेषता है-रामचरित सम्बन्धी अलौकिक घटनाओं को लौकिक रूप में चित्रित करने का प्रयास। इसमें घटनाओं को तक संगत रूप में परिवर्तित कर चित्रित किया गया है।

जैन राम-कथा संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य भाषाओं में मिलती है। जैन राम-कथा गुणभद्र की राम-कथा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो केवल विमलसूरि की राम-कथा प्रचलित है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि और गुण भद्र दोनों की रामकथाएं प्रचलित है।

विमलसूरि की रामकथा परम्परा की अन्य मुख्य रचनाओं की सूची डा० कामिल बुल्के ने इस प्रकार दी है—

प्राकृत—

शीलाचार्य कृतचउपन्नमहापुरिसचरिय के अन्तर्गत राम-लक्खन चरियम्।
भद्रेश्वर कहावली के अन्तर्गत रामयणम्।
भुवन तुंग सूरिकृत सीयाचरिय तथा लक्खन चरि।

संस्कृत—

हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के अन्तर्गत जैन रामायण।
हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत सीता रावण कथानकम्।

जिनदासकृत रामायण अथवा रामदेव पुराण।
पद्मदेव विजयगणिकृत रामचरित
सोमसेनकृत रामचरित

आचार्य सोमप्रभकृत लघुत्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित।
मेघ विजय गणिवरकृत लघुत्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित।

जिनरत्नकोषान्तर्गत उल्लिखित धर्म कीर्ति चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न पद्पुराण अथवा रामचरित्र।

ब्रह्मनेमिदत्त, शान्तिसूरि तथा अमरदास तीनों का सीता चरित्र।
हरिषेणकृत कथाकोषान्तर्गत रामायणकथानकम् तथा सीता कथानकम्।

रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोष
हरिभद्रकृत धूर्तायानम्
अमितगतिकृत धर्म परीक्षा

अपभ्रंश—

स्वयंभूदेवकृत पउमचरिउ अथवा रामायण पुराण।
रइधू (रइयू) कृत पद्मपुराण अथवा बलभद्रपुराण।

कन्नड—

नागचन्द्र कृत पम्परामायण या रामचन्द्र चरितपुराण।
कुमुदेन्दुकृत रामविजय चरित
देवचन्द्रकृत रामकथावतार
चन्द्रसागर वर्णाकृत जिनरामायण
गुणभद्र की रामकथा परम्परा की अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं—

संस्कृत - कृष्णदास कविकृत पुण्यचन्द्रोदय पुराण
प्राकृत —पुष्पदन्तकृत तिसट्ठी महापुरिस गुणालङ्कार
कन्नड़—चामुण्डरायकृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुष

पुराण—

वधुबमक्रित जीवन संबोधन
नागराजकृत पुण्याश्रव कथासार

संस्कृत–साहित्य में राम–कथा—

बाल्मीकीय-रामायण तथा महाभारत के परवर्ती काल में संस्कृत–रामकथाएं अत्यधिक लिखी गई हैं। रामकथा की संस्कृत की रचनाएं ब्राह्मण राम-कथा पर ही अधिकतर आधारित हैं। कथावस्तु की दृष्टि

से इनमें कोई विशेषता नहीं है ये सब आदि-काव्य रामायण का ही अनुसरण करती है।

रामकथा से सम्बन्धित संस्कृत-साहित्य का सम्यक् अवलोकन उसे सामान्यतः दो भागों में विभक्त कर किया जा सकता है। हरिवंश आदि अनेक महापुराण योगवशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण आदि रामकथा का संस्कृत धार्मिक साहित्य है। इसके अतिरिक्त विविध काव्य, महाकाव्य नाटक आदि रामकथा के संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा—

संस्कृत के धार्मिक साहित्य में पुराणों का अपना एक निर्विवाद स्थान है। विविध पुराणों की रामकथा का विवरण इस प्रकार है—

(१) हरिवंश—हरिवंश पुराण में राम-कथा अति संक्षिप्त रूप में आयी है।

(२) विष्णु महापुराण—हरिवंश की रामकथा से कुछ अधिक प्रसंग विष्णु महापुराण में आये हैं। वैसे रामकथा का संक्षिप्त रूप ही इसमें उद्धृत हुआ है।

(३) भागवत महापुराण—भागवत महापुराण के अन्तर्गत आई रामकथा का अपना विशेष स्थान इसलिये है कि इसमें ही सर्वप्रथम सीता को लक्ष्मी का अवतार माना गया है।

(४) कूर्म महापुराण—बौद्ध तथा जैन रामकथा के समान कूर्म महापुराण में राक्षस वंश का वर्णन आया है। सूर्यवंश के वर्णन में राम-रावण युद्ध के पश्चात् राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख हुआ है।

(५) वाराह महापुराण—इस महापुराण में रामकथा पूर्णतः तो आई ही नहीं है, किन्तु एक स्थान पर दुर्जय द्वारा श्री रामस्तवन का उल्लेख है। एक और स्थान पर वसिष्ठ के परामर्श से दशरथ द्वारा राम द्वादशी व्रत के पालन करने का उल्लेख है, जिसके फलस्वरूप दशरथ के राम आदि पुत्र हुए।

(६) अग्नि महापुराण—इस महापुराण की राम-कथा बाल्मीकि रामायण के सात काण्डों का संक्षेप मात्र है।

(७) लिंग महापुराण—इस महापुराण के इक्ष्वाकु वंश वर्णन में रामकथा अत्यन्त संक्षेप में आई है।

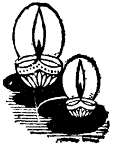
(८) नारदीय महापुराण—इस महापुराण के प्रथम खण्ड एवं उत्तरखण्ड में संक्षिप्त राम-कथा दी गयी है।

(९) वामन महापुराण—अपेक्षाकृत अर्वाचीन इस महापुराण में वेदवती तीर्थ के प्रसंग में रावण द्वारा अपमानित वेदवती का सीता के रूप में उत्पत्ति का उल्लेख है। इन महापुराणों के अतिरिक्त निम्न पुराणों में रामकथा आयी है—

१०-गरुड़ महापुराण
११-ब्रह्म महापुराण
१२-स्कन्द महापुराण
१३-पद्म महापुराण
१४-ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण
१५-विष्णुधर्मोत्तर महापुराण
१६-नृसिंह पुराण
१७-वह्नि पुराण
१८-शिव पुराण
१६-श्रीमद्देवी भागवत पुराण
२०-महाभागवत पुराण
२१-वृहद्धर्म पुराण
२२-सौर पुराण
२३-कालिका पुराण
२४-आदि पुराण
२५-कल्कि पुराण

साम्प्रदायिक रामायणों में रामकथा—

१-योगवासिष्ठ रामायण—योगवासिष्ठ रामायण सम्वादात्मक है। वसिष्ठरामचन्द्र सम्वाद में वसिष्ठ राम को मोक्षप्राप्ति पर विस्तार से उपदेश करते हैं। यह संवाद बाल्मीकी ने अरिष्टनेमि को सुनाया था। यही संवाद योग वासिष्ठ ने अगस्त्य सुतीक्ष्ण की शिक्षा के लिये दोहराते हैं। (क्रमशः)



आनन्द की ओर—

—रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति गु० कां० वि० वि० हरिद्वार.

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ऋ० ३.६२.१० ॥ यजु० ३.३५ ॥ यजु० ३६.३ ॥

अन्वयः—ओ३म् भूः भुव स्वः । सवितुः देवस्य तत् वरेन्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात् ।

अन्वयार्थः—ओ३म् परमेश्वर का मुख्य नाम है जो सब का रक्षक है वह (भूः) सत् है, (भुवः) चित् है (स्वः) आनन्दस्वरूप है, ऐसे (सवितुः देवस्य) सकल जगत् के उत्पादक एवं प्रेरक सविता देव के (तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि) उस शुद्धतम वरण करने योग्य, पापों को दग्ध करने वाले तेजोरूप का हम ध्यान करें, (यः नः धियः प्रचोदयात्) अब जो यह ध्यान किया हुआ या धारण किया हुआ प्रभु का तेजः स्वरूप है वह हमारी बुद्धियों को, हमारे कर्मों को सदा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ।

हे ओ३म् ! हे ओङ्कार ! हे प्रणव ! तू सत् चित् और आनन्दस्वरूप है । हे प्रभुवर ! सत् और चित् तो हम भी है अर्थात् सत्ता तो हमारी भी है और चेतन भी हम हैं ही, परन्तु आनन्द हमारे पास नही है । इसलिये इस एक अभाव के कारण जन्म-जन्मान्तरों से, युग-युगान्तरों से, कल्प-कल्पान्तरों से आनन्द की खोज में हम निकले हुए हैं, परन्तु यह आनन्द हमें मिला नहीं । हमने सर्वत्र इसे ढूण्ढ मारा पर कहीं यह हमें मिला नहीं । संसार के नानाविध रंग-रूपों में ढूण्ढा तो वहाँ भी हमें यह मिला नहीं । संसार के सर्वविध रसों में-स्वादों में इसे देखा तो भी यह हमें मिला नहीं, नाना प्रकार के हास्य-परिहासों में, नाना-विध स्वर लहरियो में, ध्वनियों में, वाद्यों में, उपदेशों में, प्रवचनों में, व्याख्यानों में, गीतों में, संगीतों में, स्तवनों में, स्तोत्रों मे इसे तलाश किया पर यह हाथ आया नहीं । विभिन्न प्रकार की गन्धों में, सुगन्धों में इसे देखा पर वहाँ भी यह मिला नहीं । विविध स्पर्शों में, भोगविलासों में हमने इसे भली-भांति देखा भाला, पर यह कहीं हमें मिला नहीं । थोड़ी-बहुत देर जो इन सब में हमें आनन्द प्रतीत हुआ भी तो बहुत जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि वह आनन्द नहीं था बल्कि आनन्द का आभास मात्र था ।

हे नाथ ! यह आनन्द हमें ममता की साक्षात् मूर्ति अपनी माँ की झोली में नहीं मिला । उस बिचारी ने हमें अपनी झोली मे प्यार से लिटाकर अपने स्नेह का सार रूप दुग्धामृत पिलाया तो भी हमें यह नहीं मिला । भले ही इस माँ के स्नेह पूर्वक पिलाये हुए दुग्धामृत ने क्षण भर को, पल भर को हमें तृप्त

कर मुख से सुला दिया, पर जब हम फिर जागे तो फिर वही रोना, फिर वही भूख, फिर वही अतृप्ति। तो इस प्रकार यह भी आनन्द न था केवल आनन्द का आभास मात्र था। पिता ने गोद में लिया और प्यार से नाना प्रकार के रस पिलाए, जूस पिलाये, स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए, अवलेह चटाए, पर फिर भी मैं तृप्त न हुआ-आनन्दविभोर नहीं हुआ। बल्कि अतृप्त का अतृप्त ही रहा, भूखा का भूखा ही रहा। क्षण भर को, पल भर को थोड़ा सा तृप्त होने पर मैं तो यही समझे बैठा था कि बस अब पिता ने तृप्त कर दिया है, आनन्दित कर दिया है, पर मुझे क्या पता था कि यह भी वह तृप्ति नहीं, वह आनन्द नहीं जिसकी कि मैं खोज में जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा हूँ। मैं बहुत ही शीघ्र फिर इस संसार में अतृप्त ही बैठा रह गया।

मेरी प्यारी माँ ने, मेरे प्यारे पिता ने मुझे तृप्त करने के लिये-मुझे आनन्दित करने के लिये मानो सिर धड़ की बाजी लगा दी थी। उन्होंने मुझे सुन्दर से सुन्दर खिलौने ले दिये, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र बनवा दिये, नाना प्रकार के यान-बग्घी, साईकिल आदि आदि ले दिये, बहुत सी चित्रों से विचित्र बनी हुई सुन्दर से सुन्दर एवं आकर्षक बनी हुई प्यारी-प्यारी पुस्तकें ला दी, यह सोच कर, कि किसी तरह मैं खुश हो जाऊँ-तृप्त हो जाऊँ-आनन्दित हो जाऊँ। मैं भी तब समझता था कि "यह सब कुछ मिल जाने पर अब मैं सब तरह से तृप्त हो जाऊँगा, अब मेरी प्यास बुझ जायेगी, मेरी भूख मिट जायेगी, मेरी इच्छा पूर्ण हो जायेगी, पर पल भर में मैं फिर अपने माता-पिता को प्यासा मिला, भूखा मिला, अतृप्त मिला, निराश और उदास मिला।"

मेरे माता-पिता मुझे स्थान-स्थान पर घुमाने ले गये, अर्थात् वे मुझे हरिद्वार ले गये, शिमले ले गये, मंसूरी ले गये, चम्बे ले गये, आबू ले गये, जम्मू ले गये, कश्मीर ले गये, दिल्ली ले गये, बम्बई ले गये, कलकत्ता ले गये, देश ले गये, विदेश ले गये, तात्पर्य यह है कि मुझे उन्होंने सुन्दर से सुन्दर नगर दिखाये, सुन्दर से सुन्दर से प्राकृतिक दृश्य दिखाये, हरे-भरे घोर घने जङ्गल दिखाये, उनमे विहार करने वाले सुन्दर-सुन्दर प्राणी दिखाये, सुन्दर-सुन्दर हरे-भरे पर्वत दिखाये, सङ्गमरमर के पहाड़ दिखाये, स्वच्छ जल के प्यारे-प्यारे स्रोत दिखाये, सरित सरोवर और सरिताएं दिखायी। मेरे माता-पिता ने यह समझा कि "मै यह सब देखकर तृप्त हो जाऊँगा, खुश हो जाऊँगा-निहाल हो जाऊँगा, आनन्दित हो जाऊँगा।" मैं ने भी बड़ा हर्ष अनुभव किया था तब, यह सोच कर कि "यह सब देखभाल कर मै सब प्रकार से तृप्त हो जाऊँगा।" पर मेरे माता-पिता को क्या या और मुझे भी क्या पता था कि मैं फिर वैसे ही प्यासा का प्यासा-अतृप्त का अतृप्त ही रह जाऊँगा।

मेरी माता ने, मेरे पिता ने, मेरी बहिनों ने, मेरे भाईयों ने मुझे तृप्त करने के लिये श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वानों की-ज्ञानियों की शरण में भेजा जहाँ मै पढ़ने-पढ़ाने में अध्ययन-अध्यापन में ऐसा तल्लीन हुआ-ऐसा मग्न हुआ कि कभी-कभी अपने भोजन आदि को भी मैं भूल गया। मैने जिस दिन इन गुरुओं की ज्ञानियों की-विद्वानों की शरण में पहुँचा था उस दिन मैं बडा प्रसन्न था और मैने तब अपना बडा सौभाग्य मानते हुए यह विचारा था, कि अब मुझे किसी प्रकार का कष्ट-क्लेश नहीं रहेगा और मै सब प्रकार मे सुखी हो जाऊँगा, शान्त और तृप्त आऊँगा आदि-आदि। पर मुझे यह मालूम न था कि यहाँ पर भी एक

दिन में अपने आपको निराश और हताश खड़ा पाऊंगा जिस की मैं खोज में हूं उस अनुपम आनन्द से मैं अपने को वञ्चित अनुभव करूंगा।

मेरे माता-पिता ने, मेरे बन्धु बान्धवों ने मेरा विवाह रचाया, मुझे मेरी आशाओं से भी बढ़कर सुन्दर, स्वस्थ एवं सुयोग्य जीवन साथी पत्नी वा पति प्राप्त करा दिया। पुरोहितों ने, ब्राह्मणों ने, पण्डितों ने संस्कार कर दिया। गुरुओं ने आचार्यों ने, देवी-देवताओं और संन्यासी महानुभावों ने बड़े लाड़-प्यार से यह आशीर्वाद दिया - "सविता वामायुः दीर्घं कृणोतु, ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म् शुभ भवतु" इत्यादि। मैंने सोचा, यहाँ मुझे वह सब कुछ मिल जायेगा जिस की कि मैं खोज मे निकला था। इसमे कोई सन्देह नही कि मुझे आरम्भ-आरम्भ मे वहाँ ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव मे मैं जिस आनन्द की खोज मे निकला था वह यहाँ ही है। मैने यहाँ सुन्दर से सुन्दर आकर्षक से आकर्षक वस्त्र पहने, नाना प्रकार के स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन खाए, पौष्टिक से पौष्टिक आहार लिये और भोगविलासो में ऐसा लीन हो गया जैसे कि यही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य हों। इसमें कोई सन्देह नही कि पहले-पहले मुझे यह भोगविलास ही सब कुछ लगा। इस से बढ़ कर मुझे कुछ और दीखा ही नही। मैंने समझा, बस जो कुछ है वह सब यही है। तपों का तप यही है, जपों का जप यही है, श्रवणों क श्रवण यही है, मननों का मनन यही है, स्पर्शों का स्पर्श यही है, स्वादों का स्वाद यही है, प्राप्तव्यो का प्राप्तव्य यही है, रसों का रस यही है, तृप्तियों को तृप्त यही है, आनन्दों का आनन्द यही है इत्यादि। मुझे तब यह अपना जीवन साथी (पत्नी वा पति) प्राणो से प्यारा लगने लगा, सब जग न्यारा लगने लगा दुःखो से दूर करने वाला लगने लगा। मुझे मेरे जीवन साथी ने ऐसे-ऐसे सुन्दर एवं अनुपम खिलोने दिये कि मैं गद्‌गद् हो गया। ये खिलौने बिना चाबी के चलते थे, बोलते थे, हँसते थे, नाचते थे, गाते थे, खाते थे, पीते थे, नाराज होते थे, राजी होते थे, कभी झोली में घुसते थे, कभी कन्धे पर चढते थे, कभी सिर पर चढ़ते थे, कभी अंगुली पकड़ कर साथ चलते थे इत्यादि। बस मुझे यही स्वर्ग भासने लगा, यही वह दिव्य लोक प्रतीत होने लगा, यही वह ब्रह्म का अनुपम धाम त्रिपाद अनुभव होने लगा, जिस को जानकर फिर मनुष्य के लिये कुछ पाने योग्य शेष नही रहता। पर मुझे क्या मालूम था कि कुछ ही दिवसों मे, कुछ ही मासों में, कुछ ही वर्षो में जब मैं भोग विलासों में अपने जीवन की अमूल्य निधि को खो बैठूंगा और मैं ढोल की पोल बन कर रह जाऊँगा तो फिर मेरी कमर दुःखने लगेगी, मेरा सिर दर्द करने लगेगा, हाथ-पैर लड़खड़ाने लगेंगे, आँखों के सामने अन्धेरा-अन्धेरा सा छाने लगेगा, कान भी कुछ ऊँचा सुनने लगेंगे, हाथों से तब कुछ उठाना चाहते हुए भी उठाया नही जायेगा, पैरों से कहीं चलना चाहते हुए भी फिर चला नहीं जायेगा, कुछ पढना चाहेंगे तो सिर चकराने लगेगा, जीवन में से तब उत्साह एवं उमंगे सब विदा हो जायेगी, और मैं फिर शक्ल और अक्ल से हीन ठूंठ सा बन कर रह जाऊँगा, तात्पर्य यह है कि मेरे तन का सब प्रकार से दिवाला सा निकल जायेगा; परन्तु फिर भी मेरा मन भरेगा नही, प्यासे का प्यासा, भूखे का भूखा, और अतृप्त का अतृप्त ही बना रह जायेगा। इत्यादि। बस फिर क्या होगा मैं अवाक् सा खड़ा रह जाऊंगा और झट यह कहने लग जाऊंगा कि क्या वह स्वर्ग यही है? क्या वह त्रिपाद यही है? क्या वह तृप्ति यही है? क्या वह आनन्द धाम यही है जिस ने बहुत शीघ्र ही मुझे फिर अतृप्त प्यासे का प्यासा ही नही प्रत्युत रोग-शोक से ग्रस्त कर के रख दिया। यहाँ भी मुझे वह नही मिला जिस की मुझे खोज थी, जिस के अन्वेषण के लिये मैं युगयुगान्तरों से निकला हुआ था। बस फिर क्या था, मैं स्वर्गधाम रूप गृहस्थ से भी आगे बढ़ा और ऐसा आगे बढ़ा कि जा पहुंचा उस सवितादेव की शरण में, जिसने कि मुझे उत्पन्न किया था और मुझे ही नहीं सकल जगत् को भी

हिन्दी में दयानन्द युग—

—ज्ञानचन्द शास्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सन् १६५७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कलकत्ता में अपनी स्थापना कर ली, और सात वर्षों के संघर्ष के बाद कम्पनी ने अपना झण्डा अवध पर भी फहरा दिया। इस विस्तारवादी मनोवृत्ति ने सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में समूचे देश पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया, और साथ ही कम्पनी के काले शासन का अन्त हो गया। देश का शासन महारानी विक्टोरिया के अधीन हस्तगत हो चला। कम्पनी के अन्त हो जाने और महारानी के द्वारा शासन की बागडोर सम्भालने से भारत की जनता ने राहत की सांस ली। इस प्रकार १०० वर्षों में अंग्रेजों ने भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

लार्ड मैकाले ने कहा था, यदि किसी देश, जाति पर पूर्ण रूप से प्रभुत्व स्थापित करना हो तो उसकी संस्कृति, सभ्यता और भाषा बदलो, साथ ही अपनी सांस्कृतिक तथा भाषा का बाना पहना डालो।

अंग्रेजी सांस्कृतिक और भाषा भारतीय युवकों के लिये आकर्षण की वस्तु बन गयी थी। हिन्दू, मुस्लिम धार्मिक नेता नवयुवकों के इस आकर्षण से चिन्तित थे, साथ ही राजा राममोहन राय, सैयद अहमद खाँ जैसे कुछ नेता अंग्रेजी शिक्षा तथा भाषा का समर्थन कर रहे थे।

वैसे १५वी शताब्दी में ईसाई धर्म प्रचारकों ने दक्षिण भारत में प्रवेश कर लिया था, पर अंग्रेजी शासन में धर्म प्रचार को खुला बल मिला। इस काल में दक्षिण भारत गरीबी से जूझ रहा था। इस दैवी प्रकोप का ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म प्रचार का सुअवसर समझ कर एक नारा दिया—

ईसा मसीह हमें क्या देता है।
खाने की रोटी और तन का कपड़ा॥

अंग्रेज रहन-सहन को अपनाकर लोग शरीर से भी अंग्रेज बन गये. ईसाई प्रचारको ने इस मुल्क की भाषा सीखी और सभी भाषा में बाईबल का अनुवाद किया। हिन्दी भाषा मे बाईबल का अनुवाद सर विलियम ने किया था, साथ ही इसकी भाषा शैली कथा वाचक सी रखी जिससे यहां की जनता बाईबल से प्रभावित हुई।

बाईबल में कपोल कल्पित अनेक प्रसंग हैं। सृष्टि उत्पत्ति के विषय में वर्णन है कि हम सभी जनसमूह में एक थे, एक भाषा भी। आसमान से यहोवा उतर आया और उसने हमें विखण्डित कर दिया,

जिससे आज हम दूर-दूर अपने घर और देश बनायें हुए है। साथ ही हिन्दू देवी-देवता पर घ्रणित आरोप लगाकर भारत की भोली-भाली जनता को फुसला लिया और अपनी संस्कृति का बाना पहना दिया।

ईसाई धर्म प्रचार हेतु सारे देश में मिशन स्कूलों की स्थापना कर दी देश की देशी भाषाओं के माध्यम से बाईबल को अनिवार्य शिक्षा बना दो। साथ ही पाठ्य विषयों को उन विद्यालयों के छात्रों को पढ़वाने के लिये यहाँ की देशी भाषाओं में पाठ्य पुस्तको की रचना भी कराई थी।

हिन्दी के विद्वान् कहते हैं कि ईशाईयों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर उसे अपने धर्म का प्रचार का आधार बनाया था। लेकिन ऐसा नहीं, उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में हिन्दी को प्रचार का माध्यम बनाया, साथ ही बंगला, मराठी, पंजाबी, उर्दू, राजस्थानी, नेपाली, गुजराती, तेलगू आदि भारतीय भाषाओं को प्रचार माध्यम बनाया था। प्रायः भारत की सभी भाषाओं मे ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। ईसाई धर्म के प्रचार के प्रस्ताव के कारण मधुसूदन जैसे बुद्धिजीवी हिन्दू भी ईसाई बन गये, इतना ही नही विलायत से शिक्षा प्राप्त करके हिन्दू मजबूरन शासकों का धर्म स्वीकार कर रहे थे।

इन्हीं कारणों ने महर्षि दयानन्द के लिये कर्मक्षेत्र तैयार कर दिया था। अपनी कलम के द्वारा जो काम उन्होंने किया वही यूरोप में वहाँ के धार्मिक नेता मार्टिन-लूथर ने किया था।

हिन्दी साहित्य इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सम्वत् १६०० से मानते हैं। सम्वत् १६२५ से १६५० तक प्रथम उत्थान मानकर इस आधुनिक काल को बाट दिया है इन तीनों को भारतेन्दु युग, द्विवेदी–युग, छायावादी युग का नाम हिन्दी विद्वानों ने दिया है। लेकिन १६२५ से पहले २५ वर्षों का युग किस नाम से जाना जाये, यह प्रश्न आज भी हमारे सामने बना हुआ है।

सम्वत् १६०० के आस-पास ईसाई धर्मावलम्बी कबीर जैसी भाषा में खण्डन-मण्डन कर रहे थे, जिसका मुंह तोड़ जवाब महर्षि दयानन्द ने दिया। हिन्दी के विद्वानों ने स्वामी जी की शैली का खण्डनात्मक रूप ही लिया। यदि वे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्यरत्नमाला, व्यवहार-भानु आदि स्वामी जी की रचनाओं पर ये विद्वान् दृष्टिपात कर लेते एवं साथ ही भाषा का अध्ययन भी सत्यार्थप्रकाश के खण्डन-मण्डन वाले प्रकरणों को लेकर की गई समीक्षा न करते।

स्वामी जी की विभिन्न विषयों के अनुरूप शैली भी बदलती चली गई। अतः हिन्दी के समालोचकों को स्वामी जी सभी रचनाओं को सम्मुख रखकर शैली और भाषा को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्णय देना

है कि सम्वत् १६०० से १६२५ तक का समय दयानन्द युग है। स्वामी जी गद्य शैली की समीक्षा करते समय धर्म प्रचारक होने का संकुचित दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिये। जो गद्य शैली भारतेन्दु युग में अपनाई गई, उसका शिलान्यास तो स्वामी जी और उनके समकालीन लेखकों ने शास्त्रीय पद्धति से समीक्षा और व्याख्या करने की पद्धति का आरम्भ किया था। यह सत्य है कि उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि पर भारतेन्दु युग में लेखनी उठी।

स्वामी जी की लेखनी में भारतीय चिन्तन परम्परा में हलचल पैदा कर दी। साथ ही ईसाई, पादरियों की बोखलाहट को जन्म दिया, जो वेद और पुराणों की जमकर आलोचना करके भारतीय जनता के धार्मिक विश्वास को आघात दे रहे थे। संस्कृत का ज्ञान न होने के कारण जनता उनके कुतर्कों का जबाब नहीं दे पा रही थी। अतः समय की पुकार थी कि कोई संस्कृत का विद्वान् धर्म ग्रन्थों को बोलचाल की भाषा में समझाकर जनता को नई दिशा दे सके। वह कौन सी भाषा हो देश में अनेक भाषा है यह प्रश्न सम्मुख खड़ा था। महर्षि दयानन्द ने अपना कार्य राष्ट्र भाषा हिन्दी में श्री गणेश करके एक नई दिशा दिखाकर को महत्वपूर्ण कार्य किया उसके लिये उनका नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिये था। मातृ भाषा गुजराती होते हुए भी हिन्दी में ग्रन्थ लिखना यह स्पष्ट कर देता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाना चाहते थे। उनका उद्देश्य वसुदेव कुटुम्बकम् की भावना थी, अपने स्वप्न को साकार करने के लिये हिन्दी में ही ग्रन्थ की रचना की।

स्वामी जी की क्रान्तिकारी लेखनी ने विपक्षियों का खण्डन और प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्य किये। प्राचीन संस्कृति साहित्य का अनुसन्धान कार्य हिन्दी में सर्वप्रथम स्वामी जी की लेखनी से हुआ।

स्वामी जी धर्म प्रचारक थे। समीक्षकों का इतना कहने से ही काम नही चलेगा उनके पीछे एक युग चला आ रहा है यदि हम उदार दृष्टिकोण से उनकी शैली की समीक्षा करे तो हमें हिन्दी गद्य शैली को वर्तमान रूप देने वालों लेखकों में स्वामी जी को प्रथम स्थान देना पड़ेगा। भारतीय संस्कृति को जनता की भाषा में न लिखने वाले स्वामी जी प्रथम विद्वान् हैं। स्वामी जी से पूर्व संस्कृत के विद्वान् हिन्दी में लिखना अपना अपमान समझते थे। प्राचीन धर्म ग्रन्थों को दीमकें चाट रही थी। पश्चिमी दुर्लभ ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां मुँह मांगे दामों में खरीद कर अपने ग्रन्थकगारो की शोभा बढ़ा रहे थे। स्वामी जी ने भारतीय विद्वानों को एक नया रास्ता दिया जिससे संस्कृत वांगमय में कार्य करने की होड़ लग गई, इस सब कार्य का श्रेय स्वामी जी को जाता है।

इस प्रकार हम प्रतिपादनात्मक, निर्वचनात्मक वादात्मक, इन तीनों शैलियों में स्वामी जी को पाते हैं। वेद मन्त्रों की व्याख्या निर्वचनात्मक शैली का उत्तम उदाहरण है। वह इस क्षेत्र में इस शैली के जनक कहे जायेंगे क्योंकि इनसे पहले किसी ने किसी भारतीय भाषा में यह कार्य सम्पादित नही किया था। प्रतिपादनात्मक शैली मे उन्होने अपने विषयों को हिन्दी में सर्वसाधारण के सामने रखने का जो सफल प्रयत्न किया था। जबकि उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। वादात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने

विपक्षियों का खण्डन-मण्डन करते समय किया इसमें उनके पथ प्रदर्शक ईसाई धर्म प्रचार कर रहे हैं फिर भी स्वामी जी की शैली ईसाई धर्म प्रचारकों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और परिष्कृत है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

इन्हीं सब दृष्टियों से हमें मानना पड़ेगा कि सम्वत् १६०० से १६२५ तक का समय-दयानन्द युग था। इसमें जो कार्य स्वामी जी और उनके समकालीन लेखकों ने किया जिसे भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने अधिक सजाया और संवारा है।



वैदिक शिक्षा तथा इसकी महत्ता—

—धनीराम सैनी

दयानन्द जी सरस्वती आर्यसमाज के तीसरे नियम में लिखते है—"वेद सब सत्य–विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" स्वामी जी के इस नियम को निर्माण करने का उद्देश्य केवल वेद की शिक्षा को न जानने से था—साथ ही हमारी प्राचीनकाल से लुप्त वेद के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न करना था। स्वामी जी चाहते थे कि संसार के व्यक्ति वेद की ओर लौट चले, लोगों ने यथार्थ ज्ञान को भूलाकर रूढ़िवादिताओं पाखण्डों से, अविद्या से अपने आत्मा को ढक दिया है। स्वामी दयानन्द जी ने वेद की महत्ता की ओर प्रकाश डाला और वेद के रहस्य को बतलाया। ऋषि दयानन्द का प्रमाणों के आधार पर विश्वास था कि वेद में परमेश्वर, प्राकृतिक नियम और परमेश्वर का आत्मा और प्रकृति के साथ सम्बन्ध, इन सब बातों के विषय में सत्य ज्ञान को प्रकाशित किया गया है तो इसे ईश्वरीय सत्य के प्रकाश के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? इसके पश्चात् विद्वान् ऋषि की शिक्षा को सर्वोत्तम बतलाते हैं क्योंकि वह वैदिक और वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली थी। एक पाश्चात्य विद्वान् लिखते है—In the Matter of vedic interpretaion, Iamconvinsid that whatever may be the fianl complete interpretation, Dayanand will be honoureb as the first discoverer of the night clubs vediç education," वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या कोई भी हो, ऋषि दयानन्द का यथार्थ निर्देशो के प्रथम आविर्भावक के रूप मे तथा वैदिक शिक्षा के रूप मे सदा मान किया जायेगा।

निष्कर्ष यह निकलता है कि वेद की जो शिक्षा है वह – ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित वेद वीहित शिक्षा प्रणाली है। वैदिक शिक्षा पूर्णतः वैज्ञानिक तथा मानवता का पाठ पढ़ाती है। स्वामी की सत्यार्थ–प्रकाश में ब्रह्मचारी को किस प्रकार आचार्य के पास जाना चाहिये लिखते हैं। साथ ही पांचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों व लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवे, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य कुल में हो। पिता माता वा अध्यापक अपने लडके-लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। आचार्य अपने शिष्यों को शास्त्रों की विधिवत् शिक्षा देवें तथा प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं को सिखलावे।

वेद को स्त्री और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार है—

जैसे जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं। और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढने-पढाने से कुछ भी न आवें वह निबुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है। और जो

स्त्रियों के पढ़ाने का निषेध करते हो मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो वेद में कन्याओं कन्याओं को पढ़ने का प्रमाण—

"ब्रह्मचर्य्येण कन्या३युवानं विदन्ते पतिम् ॥"

स्वामी जी बहुत ही चिन्तनशील दार्शनिक थे वे चाहते थे कन्याओं की पाठशालायें वा गुरुकुल दूरी पर होने चाहिये। आज हमने वैदिक शिक्षा को अनुभव किया है कि कॉलेजों में योग्यता-नैतिक शिक्षा होनी चाहिये जब हमने स्थिति अनुभव को तो हमने वेद को स्मरण करना आरम्भ किया और वेद के महत्त्व की ओर ध्यानाकर्षित हुए हैं। सह शिक्षा से क्या परिणाम निकले हैं यह आज सर्वविदित ही है आज वेद के आलोचक ही कहने लगे है —"In the whole word, there is no study so beneficial and so elevating, as that of the vedas and upnishads. they are tne proofs of the highest-wisdom."—Unknown. जर्मन के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् मैक्समुलर ने १८७० में वेद का अनुवाद प्रकाशित किया उसने भूमिका में लिखा था—"वेद तथा वेद की शिक्षा गड़रियों के गीत, बच्चों की बिलबिलाहट और जादू टोनों के मन्त्रों से भरपूर है—

मैक्समूलर की सम्मति ने योरुपियन और भारतीय मस्तिष्क में वैदिक शिक्षा से उत्पन्न कर दी। परन्तु १८७८ अर्थात् आठ वर्ष पश्चात् महर्षि दयानन्द की (ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का) नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई और उसके पास भी एक कापी पहुँची एकाएक उसके विचारों में क्रान्ति आ गई परिणामस्वरूप उसने अविलम्ब एक पुस्तक छापी जिसका नाम है—India-what it teache us? यह इण्डियन सिविल सर्विस के परीक्षार्थियों को पाठ्य पुस्तक के रूप पढ़ाई जाती रही है—इस पुस्तक में क्या लिखा है—"मेरी धारणा है कि मनुष्य मात्र के स्वाध्याय, कल्याण के लिये आर्य जाति के लोगों के अध्ययन के लिये वेद के समान कोई पुस्तक महत्वपूर्ण और उत्तम नहीं है इसकी शिक्षा से विश्व कल्याण सम्भव है। अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार है—"I maintain that for the study of human being rather aryan life there is no thing in the world egual inimportance to the vedas for us educati n velfare is possible ot the world."—Max Mullar.

वैदिक शिक्षा के आधार में स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—२५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ वर्ष पर्यन्त कन्या जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री-१७ वर्ष जो पुरुष ३६ वर्ष ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री-१८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करें तो स्त्री-२० वर्ष तक रहे, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री-२२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करें तो स्त्री २४ वर्ष ४८ वर्ष से आगे पुरुष और २४ वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये। यह नियम कितनी विशाल शिक्षा अपने में रखता है इससे सभी परिवार नियोजन की समस्यायें समाप्त हो सकती है साथ ही चार आश्रमों का भी विधिवत् पालन करना पड़ेगा।

वैदिक शिक्षा से राष्ट्र की समुन्नति सम्भव है—

वैदिक शिक्षा उन पवित्रात्माओं ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित है—जो सर्वाङ्गीण विकास चाहते थे जिनका आत्मा पूर्णतः-योगसाधना द्वारा विशुद्ध था। इस शिक्षा-प्रणाली में हमारी आधुनिक सभी

समस्याओं का पूर्णतः समाधान हो सकता है। श्री W. D. Brown के विचार पढ़िये आपने अपनी पुस्तक-Superiority of vedic Religion में प्रकट किये हैं—It (vedic Religion) recogni ses but one god it is a thoroughly (Scien tific religion where religion and Science meet hand in hand here theology is based upon seience and philo sophy.

वैदिक धर्म एक ईश्वर का प्रतिपादन करता है पूरे तौर पर सांईस का धर्म है जहाँ धर्म और सांईस हाथ में हाथ मिलाते हैं यहाँ अध्यात्म विद्या, विज्ञान और तर्कवाद पर खड़ी है। वैदिक शिक्षा और दर्शन द्वारा ही व्याक्त स्वयं को जान सकेंगे जिससे वे अविद्या के रूप में नहीं पड़ेंगे इस अविद्या के कारण ही विश्व के व्यक्ति विशेष अपने यथार्थ उद्देश्यों को भूल गये हैं। जब हमारे देश में लार्ड मैकाले की शिक्षा-प्रणाली समाप्त हो जावेगी तभी हम अपने को पूर्ण स्वदेशी नागरिक कहने का अधिकार रखते है और हम तो आर्य वीरों से यही कह सकते हैं—"शान्ति सौरमजल उठे फिर सत्य की सुरगम बजा दे। आर्य तू है, आर्य वीरों को अभय अमृम पिला दे॥"

आज चारों ओर अन्धकार है इसका कारण है कि हम ऋषियों के बनायें नियमों से विचलित हो गये हैं वेद और वैदिक शिक्षा के आधार भूत महत्व को भूल गये है, आज विश्व कल्याण तभी हो सकेगा जब हम इस आदर्श वैदिक शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिपात करेंगे तथा जीवन में क्रियान्वित करेंगे।



गुरुकुल कांगड़ी समाचार—

दिनांक ११ एवं १२ सितम्बर, १९८२ को डा० सत्यव्रत अध्यक्ष, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय का गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में शुभागमन हुआ। विजिटिंग प्रोफेसर होने के पश्चात् गुरुकुल में उनका यह प्रथम पदार्पण था। उनके आगमन पर गुरुकुल विश्वविद्यालय के समस्त उपाध्याय एवं छात्रों की एक संगोष्ठी बौद्धिक सभा हुई, जिसमें कुलपति, उप-कुलपति एवं कुलसचिव भी उपस्थित थे। डा० सत्यव्रत जी ने संस्कृत-भाषा की महिमा एवं व्यापकता को अभिलक्षित करते हुए अपने सारगर्भित भाषण में थाईलैण्ड की भाषा में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का दिग्दर्शन कराते हुए यह सिद्ध किया कि बाह्य देशों में मूलतः संस्कृत के शब्द देखने को मिलते हैं। उन्होंने बताया कि इटली में शिक्षा, राजनीतिक तथा सामाजिक जगत् में प्रचलित परिपाटियों से पर्याप्त समन्वित है। इसीलिये इटली की एक समिति ने ऐसा भी निर्णय लिया है कि भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ इटली के विश्वविद्यालयों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये। १२ सितम्बर को पुनः डा० सत्यव्रत जी ने विश्वविद्यालयीय विद्वानों की सभा में संस्कृत साहित्य के अन्दर शब्द पयायवृत्ति को लेकर अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं शोधात्मक भाषण दिया। उन्होंने कहा कि संस्कृत इतना समृद्धियुक्त है कि वहाँ एक शब्द के सैकड़ों पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि प्रत्येक शब्द का अपना इतना महत्व है कि वह शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है उस अपेक्षित अर्थ को वह प्रयुक्त शब्द ही कह सकता है। उसके स्थान पर तद्भिन्न शब्द प्रयुक्त होकर तदर्थ को प्रकट करने में समर्थ नहीं होता है। उन्होंने कालिदास महाभारत तथा रामायण आदि अनेक ग्रन्थों के उदाहरणों द्वारा उस तथ्य की पुष्टि की। सभा की अध्यक्षता कुलपति जी ने की तथा सभा का संयोजन श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी, वरिष्ठ प्राध्यापक संस्कृत-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने किया।

१८ सितम्बर १९८२ को वेद एवं कला महाविद्यालयों के प्राध्यापकों व विद्यार्थियों के सम्मुख आई० आई० टी० दिल्ली के उप-कुलसचिव डा० रूप नागपाल जी ने परीक्षा-प्रणाली पर एक गम्भीर व तर्क सम्मत व्याख्यान दिया। डा० नागपाल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि अब प्रत्येक विश्वविद्यालय में इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र प्रत्येक विश्वविद्यालय में होना चाहिये, जहाँ पर जाकर विद्यार्थी अपनी मानसिक परेशानियों का निराकरण कर सके। उन्होंने यह भी कहा कि इस केन्द्र की आवश्यकता अब इसलिये अधिक आवश्यक हो गयी है क्योंकि अनेक सांख्यिक गणनाओं के आधार पर यह परिणाम प्राप्त हुए हैं कि प्रत्येक तीसरा विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में अधिक मानसिक तथा शारीरिक दबाव अनुभव करता है। इस दबाव को दूर करने के लिये डा० नागपाल ने यह भी मत व्यक्त किया कि अब अनेक शिक्षाविद् इस परिणाम पर पहुँचे है कि यदि एक वार्षिक परीक्षा

को दो-तीन उप-भागों में विभाजित कर दिया जाय, तो इसमे विद्यार्थी की अनेक समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। कुलपति जी ने इस बात पर बल दिया कि विद्यार्थियों से हीनता की भावना को समाप्त करके किसी न किसी प्रकार की योग्यता को विकसित किया जा सकता है। यह केवल तभी हो सकता है, जब विद्यार्थी व अध्यापक के मध्य निकट का सम्पर्क स्थापित हो तथा वह विश्वासयुक्त हो। अन्त में आचार्य एवं उप-कुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार जी ने समापन भाषण दिया।

सितम्बर माह में इतिहास विभाग में विद्वान् श्री (डा०) डी० एस० त्रिवेदी ने व्याख्यान दिया। डा० त्रिवेदी ने अपने तर्कसंगत व्याख्यान में यह मत व्यक्त किया कि वर्तमान स्वतन्त्र भारत में औपनिवेशिक विचारधारा से मुक्त होकर राष्ट्रीय दृष्टि से इतिहास को पुनः लिखा जाना आवश्यक है। डा० त्रिवेदी ने महाभारत युद्ध और उसका विश्वव्यापी प्रभाव" विषय पर व्याख्यान देते हुए यह भी कहा कि महाभारत युद्ध लगभग ५१८७ वर्ष पूर्व की घटना है। इस तिथि की स्थापना के सम्बन्ध में उन्होंने खगोलीय प्रमाण प्रस्तुत किये। कुलपति जी ने भी अपने भाषण में औपनिवेशिक दासता से मुक्त इतिहास को लिखे जाने के मत की पुष्टि करते हुए कहा कि यह परम्परा गुरुकुल के इतिहासविदों द्वारा काफी पूर्व समय से प्रारम्भ की जा चुकी है। आज आवश्यकता केवल यह है कि इस परम्परा को विकसित किया जाय। सभा की अध्यक्षता श्री डा० विजयेन्द्र कुमार शर्मा ने की तथा संयोजन विभाग के अध्यक्ष डा० विनोदचन्द्र सिन्हा जी ने किया। इस सभा में विभाग के सभी उपाध्यायों के अतिरिक्त कुलपति जी भी उपस्थित थे।

दिनांक २ अक्तूबर १९८२ को आचार्य एवं उप-कुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार जी ने स्वामी समर्पणानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल प्रभात-आश्रम में आयोजित वेद विद्वत् सम्मेलन की अध्यक्षता की।

दिनांक ८-१०-८२ को कुलपति जी, सी० बी० आर० आई० रुड़की के निदेशक श्री गुप्ता जी, डा० विजयशंकर जी एवं डा० काश्मीर सिंह भिण्डर कांगड़ी ग्राम गये। इस अवसर पर उपर्युक्त व्यक्तियों ने कांगड़ी ग्राम के विकास के लिये विचार-विमर्श किया। श्री गुप्ता जी एवं बैंक के अधिकारियों ने कुलपति जी कांगड़ी ग्राम के विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया।

दिनांक ११ अक्तूबर ८२ को वैनिस (इटली) यूनिवर्सिटी के हिन्दी-विभाग के प्रोफेसर डा० लक्ष्मण प्रसाद मिश्र ने हिन्दी-विभाग में एक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत भाषण दिया। इस सभा का संयोजन डा० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी जी ने किया।

दिनांक २४-१०-८२ को इतिहास विभाग के तत्वाधान में संयुक्त राष्ट्र-संघ स्थापना-दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्रीमती डा० पूनम सागर ने "संयुक्त राष्ट्र संघ का